जनसत्ता

बेरोजगारी के बरक्स

जब भी बढ़ती बेरोजगारी से उपजी समस्या के विकराल होते जाने का सवाल उठता है, सरकारें या तो इसकी अनदेखी करती हैं या फिर धन और रिक्तियों के अभाव आदि की दलील देने लगती हैं। लेकिन रोजगार और देश की अर्थव्यवस्था का समूचा ढांचा एक दूसरे से जिस तरह अनिवार्य रूप से जुड़ा हुआ है, इस समस्या की अनदेखी या इस पर पर्दा डालने की कोशिश का आखिर क्या हासिल होगा? यह सवाल तब और गंभीर हो जाता है, जब एक ओर बेरोजगारी के आंकड़े रोज नई ऊंचाई छू रहे हैं और दूसरी ओर खुद सरकारी महकमों में लाखों पद खाली पड़े हों। गुरुवार को कार्मिक राज्यमंत्री ने राज्यसभा में एक सवाल के जवाब में जानकारी दी कि केंद्र सरकार के विभिन्न विभागों में करीब सात लाख पद रिक्त हैं। फिर इसी मामले में अलग-अलग राज्यों की स्थिति भी चिंताजनक ही है। ऐसे में अगर केंद्र और राज्य सरकारों के अधीन विभिन्न महकमों में खाली पड़े पदों पर नियुक्ति होती तो बेरोजगारी के आंकड़ों की तस्वीर शायद कुछ और होती। लेकिन यह समझना मुश्किल है कि जब अर्थव्यवस्था के मजबूत होने का दावा किया जा रहा है तो इन पदों पर नियुक्तियों में क्या अड़चन है।

इसके अलावा, पिछले कुछ सालों के दौरान बाजार की बिगड़ती हालत और मंदी की आशंकाओं के बीच नौकरियों में कटौती की खबरें आम हैं। बंगलुरु स्थित अजीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी की ओर से जारी एक अध्ययन रिपोर्ट में यह दावा किया गया था कि भारत में 2016 से 2018 के बीच करीब पचास लाख लोगों की नौकरियां चली गईं। यहां तक कि उपभोक्ता वस्तुओं की खपत में भी कटौती करने वाली आबादी के आंकड़े सुर्खियों में है। इस सबके बीच विकास दर में गिरावट की तस्वीर देश की समूची अर्थव्यवस्था की कोई सकारात्मक तस्वीर नहीं पेश कर रही है। जाहिर है, ये सब रोजगार और आय के अभाव की वजह से क्रय शक्ति में कमी से जुड़े हालात हैं। इसके बावजूद अगर निजी क्षेत्रों में रोजगार के घटते अवसर और सरकारी महकमों में लगभग सात लाख पद खाली पड़े होने की हकीकत सामने है तो समझा जा सकता है कि अर्थव्यवस्था की स्थिति में गिरावट की क्या वजहें हो सकती हैं। इसके बरक्स जब भी बढ़ती बेरोजगारी का सवाल उठाया जाता है तो सरकारी नौकरी के बजाय दूसरे विकल्पों और स्वरोजगार की दलील दी जाती है। लेकिन सवाल है कि अगर रोजगार और आय के अभाव में लोगों की क्रय शक्ति घटती जा रही है तो स्वरोजगार पर आधारित बाजार की हालत क्या होगी!

गौरतलब है कि इसी साल जनवरी में नेशनल सैंपल सर्वे ऑफिस (एनएसएसओ) की उजागर हुई एक रिपोर्ट में कहा गया था कि 2017-18 में ग्यारह राज्यों में बेरोजगारी की दर राष्ट्रीय औसत 6.1 फीसद से ज्यादा है। रिपोर्ट के मुताबिक यह आंकड़ा पिछले पैंतालीस सालों में सबसे ज्यादा है। जाहिर है, यह बेहद निराशाजनक तस्वीर है। लेकिन बीते लोकसभा चुनाव के पहले सरकार ने इस रिपोर्ट को अहमियत नहीं दी थी और नीति आयोग ने इसे खारिज करते हुए कहा था कि यह अंतिम आंकड़ा नहीं है। लेकिन बाद में इसी आंकड़े को आधिकारिक रूप से जारी किया गया था। इस साल की शुरुआत में विश्व बैंक ने कहा था कि बेरोजगारी पर काबू पाने के लिए भारत को हर साल इक्यासी लाख नौकरियां सृजित करने की जरूरत है। सवाल है कि जब मौजूदा खाली पदों को भरने को लेकर सरकार गंभीर नहीं है या फिर निजी क्षेत्र में तेजी से कर्मचारियों की संख्या में कटौती और छंटनी हो रही है तो नौकरियां सृजित करने की विश्व बैंक की सलाह पर कौन गौर करेगा!

दूरसंचार का संकट

देश की प्रमुख निजी दूरसंचार कंपनियों ने आने वाले दिनों में ग्राहकों की जेब ढीली करने के जो संकेत दे दिए हैं, वे निश्चित ही आम लोगों के लिए बड़ा झटका हो सकता है। मोबाइल फोन आज लोगों की सबसे बड़ी जरूरत बन चुके हैं। फोन कॉल से लेकर डाटा और दूसरी अन्य सेवाएं सस्ती से सस्ती दरों पर मुहैया कराने के लिए दूरसंचार सेवा प्रदाता कंपनियों के बीच जबर्दस्त होड़ मची है। लेकिन अब ये दिन हवा होते इसलिए लग रहे हैं कि कंपनियां भारी घाटे की मार झेल रही है और फिर हाल में सुप्रीम कोर्ट ने जुर्माना भरने का दबाव और बना दिया है। कुल मिलाकर दूरसंचार क्षेत्र गंभीर संकट में फंस गया है। ऐसे में सवाल यही उठता है कि क्या कंपनियों के पास ग्राहकों की जेब से पैसे निकालने के अलावा कोई और विकल्प नहीं बचता है जिस पर विचार हो। पिछले दो दशक में भारत में निजी दूरसंचार कंपनियों के कारोबार का ग्राफ जिस रफ्तार से बढ़ा है, वह भी कम आश्चर्यजनक नहीं है। हाल में मोबाइल दरें का बढ़ने का मामला तब गरमाया जब पिछली महीने सुप्रीम कोर्ट ने एअरटेल, वोडाफोन-आइडिया और दूसरी दूरसंचार सेवाप्रदाता कंपनियों को बानवे हजार करोड़ रुपए से ज्यादा का बकाया और लाइसेंस फीस केंद्र सरकार को देने को कहा। इतना ही नहीं, यह बकाया रकम जमा कराने के लिए सिर्फ तीन महीने का वक्त दिया गया है। दूरसंचार विभाग ने भारती एअरटेल, वोडाफोन-आइडिया, आर कॉम और अन्य कंपनियों पर कुल लगभग एक लाख तैंतीस हजार करोड़ के बकाया का दावा किया है जिसमें बानवे हजार करोड़ रुपए लाइसेंस शुल्क और इकतालीस हजार करोड़ रुपए स्पैक्ट्रम शुल्क के बकाया हैं।

सुप्रीम कोर्ट के निर्देश के बाद निजी दूरसंचार कंपनियों के हाथ-पैर फूले हुए हैं। माना जा रहा है कि इससे सबसे बड़ा असर तो यह पड़ेगा कि कंपनियां अपने संकट से निपटने के लिए बोझ ग्राहकों पर डालेंगी। सबसे ज्यादा संकट एअरटेल और वोडाफोन-आइडिया पर है। इसीलिए इन कंपनियों ने सबसे पहले शुल्क बढ़ाने के संकेत दिए थे। इसके बाद जियो की तरफ से भी ऐसा ही सुनने को मिला। कंपनियां इस बात को अच्छी तरह समझ रही हैं कि अब लोगों का जीवन पूरी तरह से मोबाइल और इंटरनेट सेवाओं पर निर्भर हो चुका है, ऐसे में लोग सेवाएं लेना तो बंद करेंगे नहीं और दाम बढ़ा कर घाटे और जुर्माने की भरपाई करना ही सबसे आसान विकल्प है। लेकिन अगर कंपनियां इस तरह के संकट को नहीं झेल पाती हैं तो बाजार में इक्का-दुक्का कंपनियों का एकछत्र राज्य हो सकता है और फिर ये कंपनियां ग्राहकों को नचा सकती हैं।

दूरसंचार कंपनियों के बढ़ते संकट को देखते हुए सरकार भी सकते में इसलिए है कि कहीं अचानक इस क्षेत्र से भी कंपनियों के दिवालिया होने या बंद होने जैसी खबरें न आने लगें। इसीलिए सरकार ने फौरी राहत के तौर पर कंपनियों को स्पैक्ट्रम शुल्क दो साल के भीतर किश्तों में जमा कराने की छूट दे दी है। लेकिन कंपनियों के सामने बड़ा संकट यह है कि उन्हें एजीआर यानी समायोजित सकल राजस्व के रूप बानवे हजार से ज्यादा की रकम तो इसी वित्त वर्ष में जमा करानी है। सवाल यह है ये पैसा कहां से लाया जाए। इसलिए कंपनियों को इसका रास्ता ग्राहकों की जेब की ओर ही दिख रहा है। देश में एक अरब से ज्यादा लोग मोबाइल सेवाओं का उपयोग कर रहे हैं। ऐसे में अगर मोबाइल सेवाएं महंगी होती हैं तो यह ग्राहकों के लिए बड़ी मार होगी, वह भी तब जब मंदी से लोगों की कमर टूट रही है।

कल्पमेधा

कविता वह मन की इच्छा है, जो
हृदय को आह्लादित
कर देती है।
- खलील जिब्रान

प्रदूषण की कीमत चुकाते बच्चे

प्रदीप श्रीवास्तव

शिशुओं की मौत का वायु प्रदूषण से गहरा नाता है। जैसे-जैसे घर और घर के बाहर वायु प्रदूषण बढ़ रहा है, इससे शिशुओं की मौत का आंकड़ा भी बढ़ रहा है। इसकी मुख्य वजह यह है कि शिशुओं के फेफड़े सबसे ज्यादा संवेदनशील होते हैं और जहरीली हवा से तत्काल प्रभावित होते हैं। वैज्ञानिकों का मानना है कि शुरुआती स्तर पर वायु प्रदूषण शिशुओं के दिमाग, तंत्रिका विकास और फेफड़ों की कार्य क्षमता पर असर डालता है।

शहरों की जहरीली होती हवा में सांस लेना दूभर हो गया है। प्रदूषित हवा न सिर्फ हमारी दिनचर्या पर प्रभाव डाल रही है, बल्कि आने वाली पीढ़ी को भी इससे ग्रसित कर रही है। प्रदूषण के प्रति हमारे समाज, नेताओं और प्रशासनिक अमले की उपेक्षित सोच ने दिन-प्रतिदिन इस समस्या को और गंभीर बनाया है। हालत यह है कि अभी हाल तक प्रदूषण और उससे होने वाले मानव समाज पर प्रभाव को लेकर सरकारों के पास सटीक आंकड़े तक नहीं हैं। जो अध्ययन या शोध हो रहे हैं, वे गैर सरकारी संगठनों के भरोसे हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) के दिशानिर्देशों के अनुसार भारत में वायु प्रदूषण का स्तर सामान्य से काफी ज्यादा है, जो बच्चों को बीमार बना रहा है।

आधुनिक जीवनशैली के कुछ दुष्परिणाम हैं, जिन्हें हम तात्कालिक जरूरतों के कारण नजरअंदाज कर रहे हैं। शहरों का बेतरतीब विकास और नगर विकास प्राधिकरणों की उदासीनता शहरों को दिन-प्रतिदिन खतरनाक बनाती जा रही है। शहरों में बढ़ती रोजगार की संभावनाएं और जीवनस्तर में सुधार के कारण भीड़ बड़े शहरों की ओर खिंची चली आ रही है। गांवों में भले ही शहरों से ज्यादा साफ हवा और पानी हो, लेकिन हवा-पानी हमारी जिंदगी के स्तर को बेहतर नहीं बनाते और न ही रोजी रोटी की व्यवस्था करते हैं। पूंजीवादी असमान विकास और अराजक व्यवस्था ने शहरों की ओर पलायन को बढ़ाने का काम किया है। शहरों में भीड़ बढ़ने से बुनियादी सुविधाओं पर भार पड़ता है। स्थानीय निकायों को पानी, बिजली, सड़क आदि जरूरतों पर ज्यादा खर्च करना ही पड़ता है। भीड़ ज्यादा होने से हर चीज का उत्पादन ज्यादा होता है, ज्यादा उत्पादन कहीं न कहीं प्रकृति को नुकसान पहुंचाता है। ज्यादा भीड़, ज्यादा वाहन खरीदती है। वाहनों का धुंआ, ईंधन और मरम्मत आदि में ज्यादा व्यय होता है। संपूर्णता में यह व्यय मात्र रुपए में नहीं आंका जा सकता है। इसके चक्र में श्रम, स्वास्थ्य, समय, प्राकृतिक साधन, कार्य दिवस, क्षरण आदि सभी आते हैं, जो कहीं न कहीं प्राकृतिक संसाधनों को नुकसान पहुंचाते हैं।

गर्भवती महिलाओं पर वायु प्रदूषण के असर को लेकर पिछले दिनों एक अध्ययन प्रकाशित हुआ। इसमें विशेषज्ञों ने वायु प्रदूषण के जोखिम और थायराइड संबंधी जानकारी जुटाने के लिए नौ हजार से ज्यादा गर्भवती महिलाओं के डेटा का विश्लेषण किया। शोधकर्ताओं ने अलग-अलग मॉडलों का उपयोग करके गर्भावस्था की पहली तिमाही के दौरान नाइट्रोजन ऑक्साइड और पार्टिकुलेट मैटर (पीएम) जैसे वायु प्रदूषण कणों का महिलाओं और गर्भ पर उसके असर का आकलन किया। शोधकर्ताओं का कहना है कि गर्भावस्था की पहली तिमाही के दौरान वायु प्रदूषण के संपर्क में आने वाली महिलाओं को सामान्य महिलाओं की तुलना में थायराइड रोग होने की आशंका कहीं ज्यादा रहती है। डाक्टरों के अनुसार वायु प्रदूषण स्त्री-हार्मोन (एस्ट्रोजन) को प्रभावित करता है। भ्रूण के मस्तिष्क के विकास में थायरॉयड की भूमिका होती है। शोध में महिलाओं में थायरोक्सिन, थायरॉयड-उत्तेजक हार्मोन और थायरॉइड पेरोक्सीडेज (टीपीओ) एंटीबॉडी के स्तर को भी मापा गया। देखा गया कि चार सौ चार महिलाओं को हाइपो-थायरोक्सिनमिया और पांच सौ छह महिलाओं में टीपीओ का स्तर काफी ज्यादा निकला। शोधकर्ताओं का कहना है कि जो महिलाएं गर्भावस्था के दौरान किसी भी कारण से घर के अंदर या बाहर के प्रदूषण से प्रभावित रहती हैं, तो उनके गर्भ पर काफी असर पड़ता है। पीएम 2.5 के संपर्क में आने वाली महिलाओं में हाइपोथायरोक्सिमिया होने का खतरा इक्कीस फीसद ज्यादा पाया गया।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार क्रॉनिक ऑबस्ट्रक्टिव पल्मोनरी डिजीज (सीओपीडी) के कारण दुनिया में सबसे ज्यादा मौतें होती हैं। इसे सामान्य तौर पर सीओपीडी बोला जाता है। सीओपीडी का अर्थ है कि फेफड़ों के वायु मार्ग का बाधित हो जाना। यह बीमारी धुएं के कारण होती है। यूरोप और अमेरिका जैसे महाद्वीपों के अमीर देशों में तंबाकू का धुआं सीओपीडी का प्रमुख कारण है। अफ्रीका, लातिन अमेरिका और एशिया आदि गरीब देशों में लकड़ी, उपले, कोयला और फसल के अवशेष को ईंधन के तौर पर घर में चूल्हे पर इस्तेमाल करने के कारण सीओपीडी बीमारी जड़ जमाए है। लंबे समय तक सीओपीडी ठीक नहीं होने पर दमा हो जाता है। ग्लोबल बर्डन ऑफ डिजीज स्टडी के अनुसार 2016 में

वैश्विक स्तर पर सीओपीडी के पच्चीस करोड़ मामले सामने आए। पूरी दुनिया में 2015 में सीओपीडी के कारण तीन लाख से ज्यादा मौतें हुईं। जागरूकता का अभाव, लापरवाही और खराब स्वास्थ्य सेवाओं के कारण सीओपीडी से सबसे ज्यादा मौतें गरीब देशों में होती है। डब्ल्यूएचओ के अनुसर नब्बे फीसदी मौतें गरीब देशों में हुईं। भारत में 1990 में प्रतिवर्ष औसतन अट्ठाईस लाख लोग सीओपीडी से ग्रसित होते थे, लेकिन सन 2016 में यह संख्या तेजी से बढ़ती हुई पचपन लाख से ऊपर निकल गई।

सामान्य अवस्था में भी प्रदूषण का असर बच्चों पर सबसे ज्यादा होता है। बच्चों के लिए धूल और धुआं दोनों बेहद खतरनाक होते हैं। डीजल से उत्सर्जित होने वाले कण और धुएं के कारण दमा तेजी से फैल रही है। बच्चों के स्वास्थ्य पर काम करने वाली अंतरराष्ट्रीय संस्था- द इंटरनेशनल सोसाइटी फॉर ऑगुमेंटेटिव एंड अल्ट्रानेटिव कम्युनिकेशन (आइएसएएसी) ने बच्चों में सांस रोगों के प्रसार को लेकर किए गए एक शोध में बताया कि भारत के कई हिस्सों में खासतौर से स्कूल जाने वाले बच्चों में छह से सात वर्ष की आयु वर्ग वाले कुल चवालीस हजार बच्चों में से ढाई हजार को दमा था, जबकि करीब एक हजार बच्चे इस रोग की गंभीर अवस्था में थे। इसी तरह तेरह से चौदह वर्ष वाले अड़तालीस हजार बच्चों में तीन हजार बच्चों को दमा निकला, जिनमें डेढ़ हजार बच्चों की स्थिति गंभीर थी। भारी यातायात के दौरान बच्चों में डेढ़ गुना ज्यादा अस्थमा पैदा होने का जोखिम होता है।

तमाम शोधों और रिपोर्टों की मानें तो भारत में वायु प्रदूषण खतरनाक स्तर पर पहुंच गया है। बड़े शहरों के अलावा छोटे शहर भी इसकी जद में आ गए हैं। जहरीली हवा के कारण पांच वर्ष से कम उम्र के बच्चे सबसे ज्यादा समय पूर्व मौतों के शिकार हो रहे हैं। वर्ष 2016 में जारी विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट के मुताबिक बाहरी और घर के भीतरी प्रदूषण के कारण पांच वर्ष से कम उम्र के एक लाख से ज्यादा बच्चे समय पूर्व दम तोड़ देते हैं, यानी हर दिन करीब तीन सौ बच्चे असमय काल के ग्रास बन जाते हैं। इनमें भी आधे से ज्यादा लड़कियां हैं, क्योंकि लड़कियों की देखभाल हमारे यहां लड़कों से कम की जाती हैं।

शिशुओं की मौत को वायु प्रदूषण से गहरा नाता है। जैसे-जैसे घर और घर के बाहर वायु प्रदूषण बढ़ रहा है, इससे शिशुओं की मौत का आंकड़ा भी बढ़ रहा है। इसकी मुख्य वजह यह है कि शिशुओं के फेफड़े सबसे ज्यादा संवेदनशील होते हैं और जहरीली हवा से तत्काल प्रभावित होते हैं। वैज्ञानिकों का मानना है कि शुरुआती स्तर पर वायु प्रदूषण शिशुओं के दिमाग, तंत्रिका विकास और फेफड़ों की कार्य क्षमता पर असर डालता है। लंबे समय तक जहरीली हवा में रहने से बच्चों में कैंसर और मोटापा जैसी समस्याएं भी बढ़ जाती हैं। अध्ययन बताते हैं कि पर्यावरणीय प्रदूषण के कारण बच्चों के व्यवहार पर भी काफी असर होता है। लेकिन, यह दुर्भाग्य है कि हमारे यहां प्रदूषण को लेकर सरकारी आंकड़े न के बराबर ही हैं। सरकारी एजेंसियां भी अपडेट नहीं रहती हैं। ऐसे में दो-तीन साल पुराने आंकड़ों से प्रदूषण के खिलाफ लड़ने की योजना बनानी वाली एजेंसियां फ्लॉप हों तो कोई आश्चर्य नहीं।

साझा संघर्ष

राजकुमारी

भारतीय समाज में अगर स्त्री को सामाजिक और धार्मिक वातायन से देखें तो स्त्री को हमेशा ही परिधि में रखा गया। सामाजिक, धार्मिक दायरों में रह कर जीवन व्यतीत करने की हिदायतें देने का काम खुद को परिवार, समाज और देश का सर्वेसर्वा समझने वालों ने किया। इस व्यवस्था में एक लंबी प्रक्रिया के तहत उनकी सोच को इतना संकुचित बना दिया गया कि वे पारंपरिक या बंधी-बधाई परिपाटी की रेखाओं को न पार करें। जो पुरुष कहता है, जो पुरुष करता है, वही 'भाग्य' का लिखा समझ कर सहर्ष स्वीकार करना अपनी नियति मान लें। पुरुष से यहां अभिप्राय पुरुष के रूप में परिवार से लेकर समाज में मौजूद हर रिश्ते से है। उन्हें बिल्कुल गवारा नहीं था कि स्त्री कोई आवाज उठाए। अधिकार मांगना तो वह सपने भी नहीं सोच सकती थी। शिक्षा उसके सोच से परे की परिकल्पना थी।

बहरहाल, कुछ महापुरुषों के आजीवन और अथक प्रयासों से कुछ संभव हो पाया, चाहे उन्होंने सामाजिक यातनाओं के कितने भी दंश झेल हों। लेकिन हमारे हिस्से के हकों की लड़ाई और संघर्ष वे कर गए और हमारे सामने सब कुछ तैयार सिर्फ जीने-खाने को मिल गया तो हमें लगा कि बड़ी आसान और मौज वाली जिंदगी है और हम अपनी-अपनी राहों को संवारने में लगे हैं। मान लिया गया कि शिक्षा का मतलब परीक्षा, नौकरी तक सीमित है, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक परिवर्तन नहीं।

हम अपने आप को पढ़ी-लिखी औरतें कहती हैं, लेकिन सच है कि कई बार अधिक पढ़ी-लिखी होने के बावजूद हम दब्बू ही हैं। केवल अपनी उपलब्धियों के बारे में सोचती हैं। हमारे आसपास की दुनिया में क्या हो रहा है, क्यों हो रहा है, इससे हमें कोई फर्क नहीं पड़ता। लड़कियों को दहेज के लिए सरेआम जला दिया जाता है। बलात्कार के आकड़े कहां तक पहुंच गए हैं, यह सबकी नजर में है। कहीं भरे बाजार में लड़कियों को अगवा कर लिया जाता है। किसी लड़की के चेहरे और शरीर पर तेजाब फेंक देना, फिर जिंदगी भर उसका रोना। स्त्रियों के गर्भपात, बच्चियों के साथ धार्मिक स्थलों से लेकर शिक्षण संस्थानों तक में यातनाओं की दास्तान सुन कर हम पिघल नहीं पाते। आखिर क्यों?

दुनिया मेरे आगे

दरअसल, कभी धर्म, कभी जाति, कभी संप्रदाय आड़े आ जाता है। लेकिन यह सोचने की जरूरत है कि अगर शिक्षा के लिए मार्ग प्रशस्त करने वालों ने या अधिकार देने वालों ने भी यही दकियानूसी सोच वाला रवैया रखा होता तो हम सब स्त्रियां कहीं किसी कोने में सड़ रही होतीं। जहां कोई महिला आज मंचासीन होकर स्त्रीवादी संबोधन देती है, अस्मिताओं के संघर्षों की बात करती है, वह शोषण और अपराधों की शिकार हो रही होती, उफ्फ तक करने के लिए मर्दों की इजाजत लेनी पड़ती। कितना भी विरोध किया गया, आज भी स्त्रियों के खिलाफ पुरुषों का रवैया छिपा नहीं है। अगर महिलाएं यह सोचती हैं कि पुरुषों की कामुकता रहम कर देगी, यह सिर्फ एक वहम है। कब कौन हमलावर हो जाए, कहा नहीं जा सकता।

महिलाओं को इस गफलत में जीने की जरूरत नहीं है कि कोई काफिला उनके पक्ष में करीब आकर खड़ा हो जाए। अगर वे नहीं चाहती कि कोई जिंदगी निगल जाने वाला हादसा उनके जीवन में हो और उनकी बच्चियां सुरक्षित रहें, तो एकजुट होकर स्त्री सशक्तिकरण का लोहा समाज को मनवाना पड़ेगा। जब समस्याएं समान हैं तो मंच अलग-अलग क्यों हैं? अगर हम सामूहिक बलात्कार, जातिवाद के कारण लड़कियों की आत्महत्या, घरेलू हिंसा, उपेक्षा, भेदभाव जैसी भयंकर समस्याओं से नहीं घिरे होते, तो हम अपनी जातीय, सांप्रदायिक रेखाओं को लांघ कर बिना किसी भय के साझा अधिकारों की लड़ाई लड़ने और असामाजिक ताकतों से भिड़ने का जज्बा लिए साथ खड़े होते। खुद को वर्गों में पाट कर हम उन लोगों की राहों को आसान कर रहे हैं, जो घात लगाए रहते हैं कि कब अवसर मिले कि जाति धर्म के नाम पर बेलिबास कर दें। इतना दहशतजदा कर दें कि अंधेरे बंद कमरों में रस्सी पर लाश झूलती मिले! रोज सुबह ऐसी त्रासद खबरें कब खत्म होंगी, पता नहीं। कब हम अपनी बेटियों के लिए फिक्रमंद होंगी? कब खत्म होगी दिमाग से अस्पृश्यता? ये सवाल सभी स्त्रियों के लिए है। उम्मीद है कि वे स्त्री होकर संवेदनहीनता को अपने पास नहीं फटकने देंगी और पीड़ित स्त्रियों के खिलाफ नहीं खड़ी होंगी।

सच यह है कि चुनौतियों की भरमार है स्त्री जीवन में। सहसंकल्पी होकर ही हम अपनी चुनौतियों की आंखों में आंखें डाल कर डटी रह पाएंगी। स्त्रियों को प्रतिरोध करना होगा अपने खिलाफ हो रहे गलत का। अधिकारों की मांग को बुलंद स्वर देने होंगे। सामाजिक, राजनीतिक स्तर पर और शैक्षणिक संस्थानों आदि हर वह क्षेत्र, जहां उनके अधिकारों का हनन हो रहा हो, वहां अन्याय के विरुद्ध हस्तक्षेप करना होगा। शिक्षा और अधिकारों के जब वर्णविहीन मार्ग हमारे महापुरुषों ने खोले हैं, तो क्या हम इतने कमजोर हैं कि वर्ग, वर्णविहीन चेतना के रास्ते खोल कर संघर्षरत नहीं हो सकती? हम एक होंगे, लड़ेंगे और जीतेंगे भी। स्त्रीवादी शक्ति के गर्भ से अब साझे संघर्षों का जन्म होगा। पीड़ा बढ़ती जा रही है।

इंसाफ की राह

यह विडंबना ही है कि इस देश के जिस भव्य लोकतंत्र का ढिंढोरा पीटा जाता है, उस लोकतंत्र को चुनाव के माध्यम से इस देश के करोड़ों गरीब ही बनाते हैं। लेकिन इसी देश में पुलिस अपने किसी कथित अमीर और रसूखदार मित्र को बचाने की खातिर किसी ऐसे निरपराध गरीब को उठा कर जेल भेज देती है, जिसके पास जमानत कराने को भी पैसे नहीं होते। वह दशकों जेलों में सड़ता रहता है, जब तक वह यहां की कथित अधिक मुकदमों के बोझ से चरमराती न्यायिक प्रणाली उसे दोषमुक्त नहीं घोषित करती है। तब तक उसकी सारी जवानी और उसके बच्चों के पढ़ने-लिखने के दिन बीत चुके होते हैं और उसकी बीवी अकेली जीवन गुजारते हुए प्रौढ़ उम्र को भी पार कर चुकी होती है। कहने का मतलब उसका सब कुछ बर्बाद हो चुका होता है। ज्ञातव्य है यह केवल गरीब और सामान्य कैदियों पर ही लागू होती है, अमीरों और रसूखदार कैदियों के बारे में सभी जानते हैं। आश्चर्य की बात है कि इस स्थिति के लिए जिम्मेदार पुलिस या कोई भी अपने इस कुकृत्य पर जरा भी अफसोस या ग्लानि भाव में नहीं होता, न उसे इसके लिए कहीं कठघरे में खड़ा किया जाता है।

राष्ट्रीय अपराध रेकार्ड ब्यूरो की रिपोर्ट के अनुसार भारत में पकड़े जाने वाले सौ कैदियों में 68.7 फीसद कैदी निर्दोष होते हैं। इसके विपरीत चीन जैसे देश में वहां की पुलिस किसी भी अपराधी को पकड़ने और हवालात या जेल में भेजने से पूर्व पूरी छानबीन करती है कि कहीं कोई निरपराध या निर्दोष व्यक्ति का जीवन बर्बाद न हो। वहां की पुलिस द्वारा पकड़े गए सौ अपराधियों में केवल 0.1 प्रतिशत कैदी ही निर्दोष होते हैं। कितना फर्क है भारत, चीन और विकसित देशों के पुलिस और न्यायतंत्र में!

क्या इस तरह निर्दोष गरीब लोगों के साथ अमानवीय अत्याचार को रोका नहीं जा सकता? इसमें हमारी समूची व्यवस्था ही कठघरे में है। मसलन, जमानत के लिए भी पैसे न हो सकने के कारण लाचार गरीब की सुनवाई कभी वकील साहब, कभी जज साहब के न आने से तो कभी हड़ताल की वजह से अगली तारीख के लिए टाल दी जाती है, लेकिन उसका पैसा हर तारीख पर खर्च हो ही जाता है। इसके अलावा सत्ता का सामंती चरित्र और पुलिस की रसूखदार और धनाढ्य वर्ग से मजबूत गठजोड़ किसी भी गरीब और निर्दोष को उठा कर हवालात में बंद कर देना जैसी स्थितियां भारतीय परिवेश में आम रही हैं।

हमारे नीति-निर्माताओं को केवल अमीरों और रसूखदारों के लिए ही मानवाधिकार की रक्षा करने के साथ भारत के करोड़ों गरीबों के साथ हो रहे इस भीषण त्रासदी और अमानवीय अत्याचार पर भी संजीदगी से सोच कर उनके सहित समस्त परिवार को बर्बाद होने से बचाने के लिए कुछ न कुछ मानवीय उपाय और निदान करना ही चाहिए।

● *निर्मल कुमार शर्मा, गाजियाबाद*

संकीर्ण मानसिकता

बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के संस्कृत विद्या धर्म विज्ञान संकाय में सहायक प्रोफेसर पद पर मुसलिम शिक्षक की नियुक्ति का विरोध एक अराजक व्यवस्था और सोच का परिचायक है। यह कृत्य विरोध करने वालों की संकीर्ण मानसिकता को बताता है। दुख की बात तो यह है कि इन छात्रों को बाहर से आ रहे कुछ साधु-संत तक भड़काने में लगे हैं। सवाल है कि क्यों नहीं विश्वविद्यालय प्रशासन परिसर में ऐसे भड़काऊ लोगों को अने दे रहा है। हमें तो गर्व और खुशी होनी चाहिए कि संस्कृत भाषा का प्रचलन बढ़ रहा है जिसे हर धर्म के लोग पढ़ना-पढ़ाना चाहते हैं। कई विद्वानों का भी मत है कि हमें किसी भी व्यक्ति की जाति नहीं, वरन ज्ञान देखना चाहिए। विश्वविद्यालय के संस्थापक महामना पंडित मदन मोहन मालवीय का भी यही कहना था कि यह देश हिंदू, मुसलिम, सिख, ईसाई अर्थात हर धर्मों का है, इसलिए सबके बीच हमेशा सद्भाव बना रहे और यहां के हर छात्र अपनी श्रेष्ठता पूरे विश्व मे एक महान व्यक्तित्व को साबित करें।

● *मनकेश्वर महाराज 'भट्ट', मधेपुरा*

खतरे की घंटी

आज दुनिया में जिस तेजी से पर्यावरण प्रदूषण बढ़ रहा है और वैश्विक तापमान में वृद्धि धरती के लिए बड़ा संकट बन चुकी है, उससे संपूर्ण प्राणी जगत के अस्तत्वि के लिए चुनौती खड़ी हो गई है। इस संकट के लिए कारकानों से निकलने वाली कॉर्बन डाइऑक्साइड, नाइट्रस ऑक्साइड और मीथेन जैसी गैसें ग्रीनहाउस प्रभाव के लिए उत्तरदायी हैं। बिगड़ते पर्यावरण से बाढ़, सूखा, जंगलों में आग, बेमौसम बारिश, ऋतु चक्र में परिवर्तन और अकाल जैसी आपदाएं बढ़ती जा रही हैं। ग्लेशियर लगातार पिघलते जा रहे हैं, समुद्रों का बढ़ता जल स्तर भी खतरे का सूचक हैं। इन सबका असर यह हुआ है कि धरती पर इंसान को कई नई बीमारियों का सामना करना पड़ रहा है। जलवायु परिवर्तन का प्रभाव केवल मानव जाति पर ही नहीं, बल्कि वन्य जीवों के लिए किसी अभिशाप से कम नहीं है। अब भी अगर हम जलवायु परिवर्तन जैसे मुद्दे पर सचेत नहीं हुए तो आने वाले वर्षों में इसके गंभीर परिणाम भुगतने पड़ेंगे

● *श्रीनिवास पंवार बिश्नोई, दिल्ली विवि*

जायज विरोध

जेएनयू में पिछले कई दिनों से छात्र फीस बढ़ाने का विरोध कर रहे हैं। यह विरोध किसी इशारे पर नहीं हो रहा है, बल्कि इससे सीधे-सीधे छात्रों की समस्या जुड़ी है। शिक्षा सबके लिए जरूरी है, चाहे वह आम हो या खास। शिक्षा तो सभी को सस्ती मिलनी चाहिए, ताकि आम, गरीब, मजदूर, किसान और हर तबके के बच्चे को पढ़ाई का उचित अवसर मिल सके और पैसे के अभाव में वह शिक्षा से वंचित न हो। वैसे भी सभी को शिक्षा मुहैया कराना राज्य की जिम्मेदारी है। एक तरफ देश के समस्त जनप्रतिनिधियों, सांसदों, विधायकों, मंत्रियों को कई प्रकार की सुख सुविधाएं दी जाती हैं, फटाफट इनके वेतन बढ़ा दिए जाते हैं, लेकिन शिक्षा के मद में इतनी बढ़ोतरी नहीं की जाती कि छात्रों की फीस को न्यूनतम स्तर पर रखा जा सके। सवाल है कि जब जनप्रतिनिधियों को खजाने से भारी भरकम वेतन मिलता है तो फिर उन्हें चार हजार यूनिट बिजली मुफ्त, कैंटीन के खाने पर सब्सिडी, टेलीफोन सुविधा या अन्य कई प्रकार के भत्ते क्यों दिए जाते हैं? शिक्षा को अति कम शुल्क या शुल्क मुक्त रखा जाना जरूरी है। महात्मा गांधी तो चाहते थे कि चाहे आम हो या खास, सभी को शिक्षा, स्वास्थ्य और न्याय की सुविधा मुफ्त में मिले।

● *हेमा हरि उपाध्याय, उज्जैन*

चौपाल

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com

नई दिल्ली

www.readwhere.com